International Journal of Applied Research 2017; 3(4): 292-296

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(4): 292-296
www.allresearchjournal.com
Received: 12-02-2017
Accepted: 13-03-2017

डॉ. प्रीति पटेल
एम.ए., पी–एच.डी. (इतिहास) – अ.प्र. सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.), भारत

Correspondence
डॉ. प्रीति पटेल
एम.ए., पी–एच.डी. (इतिहास) – अ.प्र. सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.), भारत

बघेलखण्ड का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ. प्रीति पटेल

सारांश
बघेलखण्ड के उत्तर में उत्तरप्रदेश, पूर्व में छत्तीसगढ़, दक्षिण में मध्यप्रदेश और पश्चिम में मध्यप्रदेश के भाग हैं। बघेलखण्ड अब मध्यप्रदेश का भाग है। 1956 ई. के राज्य पुनर्गठन के द्वारा हार्ट 'सी' का राज्य विन्ध्यप्रदेश म.प्र. में मिला दिया गया था। शैलाश्रय प्राकृतिक कला बीथिका के समान हैं, शैलाश्रयों में बने चित्रों के तुलनात्मक अध्ययन से उन चित्रकारों से संबंधित समुदाओं के सांस्कृतिक जीवन के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती हैं। इन चित्रों से आदि मानव के मानसिक विकास के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। ये चित्र विलुप्त हो रहे वन्य प्राणियों यथा हिरण, जंगली सुअर, चीता, बाघ, गेड़ा आदि के संबंध में जानकारी के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। इसके साथ ही संबंधित क्षेत्र की कला के क्रमिक विकास के विभिन्न सोपानों को भी उजागर करते हैं।

कूट शब्दः बघेलखण्ड, ऐतिहासिक, सर्वेक्षण

प्रस्तावना
विन्ध्य क्षेत्र अपनी पिछड़ी जनजातियों दुर्गम जंगलों, पहाड़ियों तथा प्रपातों के लिये प्रसिद्ध था। जनमानस में ही नहीं अपितु विद्वत जगत में भी कुछ ऐसी ही धारणा थी कि इस क्षेत्र में संस्कृति का विकास मौर्यकाल से पहले नहीं हुआ तथा इसका स्वर्णिम युग कलचुरियों का शासनकाल था। किन्तु अब यह प्रमाणित हो गया है कि यह क्षेत्र आदिमानव की जन्मस्थली था। इस क्षेत्र की नदी घाटियों और शैलगृहों में आदिमानव ने निवास किया। पशु–पक्षियों के आखेट और कन्दमूलादि से वह अपनी क्षुधा शान्त करता था। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के पाषाण उपकरणों की बनावट के आधार पर मानव की प्रारम्भिक खाद्यार्जन व्यवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता है –
01) पूर्व पाषाणकाल
02) उत्तर पाषाण काल

पूर्व पाषाणकाल के औजारों में हस्तकुठार, पिबलटूल्स और अवशिष्ट अनुपयुक्त प्रस्तरांश पर बनाये गये गड़ासे सम्मिलित हैं। ये औजार इतर पहाड़ (रीवा) वर्दी (सीधी), शिकारगंज (सीधी) और अन्द्रावली (शहडोल) से पाये गये हैं।[1] 1867–68 ई. में कार्लाइल को पुराने रीवा राज्य से लघु पाषाण उपकरण मिले थे। पूर्व पाषाणकालीन मानव जीवन जटिल परिस्थितियों पर निर्भर था। उन्होंने वन्य पशुओं से रक्षा, उनके अखरोज एवं दैनिक उपयोग हेतु पाषाण के विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाये थे। उत्तर पाषाणकाल का अन्त होते–होते मानव को पशुपालन और कृषि का ज्ञान हुआ। इन कार्यों के लिये उसे अनेक सहयोगियों की आवश्यकता हुई, जिससे समाज संगठन का सूत्रपात हुआ। जब वह अपने अस्त्र–शस्त्र पहले से अधिक परिमार्जिक और चमकीले बनाने के अतिरिक्त उनके निर्माण में भी सुरूचि का ध्यान रखने लगा। नवपाषाण कालीन ऐसे औजार बघेलखण्ड के अमवा घाट, पटपरघाट, कटनी, दादर पहाड़ आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं।[2] टिकरिया रेलवे स्टेशन से 2 कि0मी0 दक्षिण में मनगवां की भौंटी में लघु पाषाण उद्योग की अवस्थिति बताई गई है।[3]

आद्यैतिहासिक युग
कृषि तथा अन्य व्यवसायों की वृद्धि के साथ इस क्षेत्र में ई0पू0 तृतीय स्राब्दी में आद्यैतिहासिक युग का प्रारंभ हुआ। प्रागैतिहासिक युग तथा उसके बाद आद्यैतिहासिक काल में आदिमानव स्वभावतः गुफाओं में रहता था। ये गुफायें या तो प्राकृतिक होती थी या लक्षण के द्वारा कन्दरा रूप में बनाई जाती थी। विवेच्य क्षेत्र विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं से आच्छादित है, जिनमें बहुसंख्यक आवास योग्य स्थल अद्यावधि विद्यमान हैं। इनके निकट से प्रवाहित होने वाली नदियों और सघन वनों ने मानव के आहार की व्यवस्था की।

अतः इन सुविधाओं से आकृष्ट होकर आदिमानव के आहार की व्यवस्था की। अतः इन सुविधाओं से आकृष्ट होकर आदिमानव ने यहां निवास किया और अवकाश के क्षणों में मनोरंजन हेतु विचित्र प्राकृतिक दृश्यों और पशु–पक्षियों का चित्रण किया। अभी तक लेखन कला का विकास नहीं हुआ था। अतः मानव की मानसिक क्रियाकलापों, जीवन शैली आदि को समझने के लिये प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों का विशेष महत्व है। वैसे तो मानव के कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रमाण उच्च पुरापाषाणकाल से ही मिलने लगते हैं। किन्तु मध्य पाषाणकाल में आकर उनका व्यापक स्वरूप शैलचित्रों में प्रकट होने लगता है। प्रागैतिहासिक मानव को इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के प्रमाण भी हमें सर्वप्रथम विन्ध्य क्षेत्र के शैलाश्रयों में ही प्राप्त हुए हैं। गैरिक तथा अन्य रंगों से अंकित ये चित्र मानव की प्राचीनतम अनुभूतियों के द्योतक हैं। काकबर्न ने चित्रकूट की हनुमान धारा के समीप शैलचित्रों का उल्लेख किया है। सतना जिला के मझगवां विकासखण्ड मुख्यालय से लगभग 3 कि0मी0 की दूरी पर शिलाश्रय है। यहाँ के शैलचित्रों की प्रथम जानकारी शासकीय तुलसी संग्रहालय रामवन के तत्कालीन अध्यक्ष हरिशंकर चतुर्वेदी से प्राप्त हुई। स्थानीय जन इस शैलगृह को करिया बब्बा, चुड़ैल की छठी, चुड़ैलया पाथर अथवा मड़वा पाथर कहते हैं। शैलगृह में गहराई का आभावा है, किन्तु यह पर्याप्त लम्बा है। अधिकांश चित्रों के रंग उड़ गये हैं। यहाँ पर शिकारी, बन्दर, स्वास्तिक, बारहसिंगा, हाथी आदि का अंकन है। यहाँ पर मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि का एक अभिलेख भी विद्यमान है।

रीवा डभौरा मार्ग पर चौखण्डी नामक ग्राम के समीप गिंजा पहाड़ है। इलाहाबाद – मानिकपुर रेलमार्ग के बरगढ़ स्टेशन से 20 कि. मी. दक्षिण स्थित है। यहीं एक के समान तनी है, जिस पर भीमसेन मघ का संवत 52 (130 ई0) का एक अभिलेख गेरूवे रंग से अंकित है। इसके अतिरिक्त इस पहाड़ के अनेक भागों में मनोरम शैलचित्र अंकित हैं।[4]

रीवा विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ0 राधाकान्त वर्मा और उनके विभागीय सहायकों[5] ने रीवा जिला में कुछ और शैलचित्रों की खोज की है। गड्डी समूह के शैलचित्र रीवा–सीधी मार्ग पर रीवा से 23 कि0मी0 शिवपुरवा के एक नाले के दोनों ओर स्थित चट्टानों पर अंकित है। यहाँ के चित्रों में लाल और मटमैले सफेद और गाढ़े लाल खूनी रंग का प्रयोग किया गया है। यहाँ हिरण का अंकन बहुतायत में हुआ है। बदवार समूह के शिलाचित्र रीवा – सीधी वायाँ गुढ़ मार्ग पर रीवा से 21 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है। इस प्रकार जलदर (रीवा–गुढ़–सीतापुर मार्ग पर रीवा से 30 कि0मी0) खन्दो (रीवा शहडोल मार्ग पर रीवा से 22 कि0मी0) और शिवपुरवा (रीवा से 45 कि0मी0 दूर गुढ़ सीतापुर मार्ग पर) शैलचित्र मिलते हैं।

महाजनपदकाल

बुद्ध के समय उत्तरभारत में सोलह महाजनपद के अतिरिक्त कुछ छोटे जनपद भी थे, जिनका विशेष महत्व न था। ऐसे ही जनपदों में एक करूष जनपद था। रामायण और महाभारत में इस जनपद की चर्चा अनेक बार आई है। वाल्मीकि रामयण[6] में करूघ जनपद की उत्पत्ति से संबंधित एक रोचक आख्यान है जिसमें कहा गया है कि पूर्वकाल में यहाँ दो समृद्धिशाली जनपद थे –मलद और करूष। वृत्रासुर का वध करने के पश्चात देवराज इन्द्र मल से लिप्त हो गये। क्षुधा ने उन्हें पीड़ित किया और उनके भीतर ब्रम्हहत्या प्रविष्ट कर गई। अतः देवराज इन्द्र को यहाँ गंगाजल से स्नान कराया गया, जिससे उनका मल और कारूष (क्षुधा) समाप्त हो गई। इसी मल और करूष से मलद और करूष जनपदों का जन्म हुआ। महाभारत के आदि पर्व, भीष्म पर्व ओर कर्णपर्व में चेदि और काशी जनपदों के बाद करूष का नाम आया है। करूष का तादात्म्य बघेलखण्ड से स्थापित किया जाता है।[7]

नन्द वंश

नन्द मौर्य युग के पूर्व का करूषों का इतिहास अज्ञात है। नन्दों के उदय के साथ इस क्षेत्र का भाग्य मगध साम्राज्य के साथ बंध गया। नन्दों ने अपनी साम्राज्य लिप्सा उत्तरी भारत के अनेक जनपदों को जीतकर शान्त की। इस विस्तृत साम्राज्य में बघेलखण्ड भी समाहित हो गया।

भारत व्यापी प्रथम साम्राज्य के निर्माता चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्दवंश के अन्तिम शासक धन को मार कर चाणक्य की सहायता से देश में एकच्छत्र राज्य किया। चन्द्रगुप्त के पश्चात् बिन्दुसार और बिन्दुसार के बाद उसका यशस्वी पुत्र अशोक शासक हुआ। उसके बहुसंख्यक अभिलेखा[8] से ज्ञात होता है। कि कलिंग विजय के पश्चात उसके साम्राज्य की सीमाएँ अफगानिस्तान तथा कश्मीर से कर्नाटक और बंगाल की खाड़ी से होकर गुजरात तक विस्तृत हो गई थी। चौदहवें शिला प्रज्ञापन[9] में उत्कीर्ण मेरा साम्राज्य सुविस्तृत है'' कथन से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। उसका यह विशाल और सुसंगठित साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। संभवतः यह भाग उज्जयिनी के अन्तर्गत था। पुराणों और बौद्ध साहित्य के परस्पर विरोधी विवरणों के करण अशोकोत्तरकालीन इतिहास का निर्माण अत्यधिक श्रमसाध्य है। अशोक की आंख मूँदते ही शक्तिशाली साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह बिखरने लगा। सुदृढ़ केन्द्र के अभाव में अंतिम मौर्य शासक वृहद्रथ का वध कर उसका सेनापति पुष्यामित्र शुंग स्वयं शासक बन बैठा। दक्षिण में उसका साम्राज्य नर्मदा घाटी तक विस्तृत था। पुष्यामित्र के शासनकाल में केन्द्रीय राजधानी पाटलिपुत्र में ही बनी रही [10] बघेलखण्ड का शासन उसके पुत्र अग्निमित्र द्वारा विदिशा आदि बड़े नगर शुंग शासन के अन्तर्गत थे। मौर्य सम्राट बृहद्रथ के समान अन्तिम कण्व शासक देवभूति को उसके वासुदेव ने मौत के घाट उतार दिया। प्रतीत होता है कि पुष्यमित्र की मृत्यु उसका सामाज्य पांचाल, मथुरा, कौशाम्बी, अयोध्या, और बिदिशा के राज्यों में बंट गया।[11] शुंग और नाम मित्रधारी अनेक शासकों के किक्के तथा कतिपय अभिलेख उपर्युक्त क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। शुंगों के पतन के पश्चात्[75] ई0पू0 से कर्ण्वों का शासन प्रारम्भ हुआ। उनका शासनकाल घटना विहीन रहा। शीघ्र ही वे दकन के सात वाहनों द्वारा अपदस्थ कर दिये गये। सात वाहनों ने अपनी सत्ता का विस्तार आकरावन्ति (मालवा) क्षेत्र तक किया। वह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि बघेलखण्ड उनके शासन के अन्तर्गत था।

मित्र शासक

ई0पू0 द्वितीय शती के मध्य से लेकर तीसरी शती के प्रारम्भ तक उत्तर भारत में मित्र नामधारी अनेक राजाओं ने शासन किया। कौशाम्बी के मित्र शासकों के नाम वृहस्पतिमित्र, ब्रम्हमित्र, वरूण मित्र, गोमित्र, शिवमित्र, जेठमित्र, देव मित्र आदि है।[12] कौशाम्बी से लगभग 25 मित्र शासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त एक मुद्रा पर रूद्रदेव का नाम अंकित है। उसका अभिज्ञान प्रयाग पशिस्ति[13] में उल्लिखित और समुद्रगुप्त के समकालीन रूद्रदेव से किया गया है।

भरहुत के एक अभिलेख[14] में उल्लेख है कि विदिशा के शासक रेवती मित्र की पत्नी के द्वारा एक स्तम्भ स्थापित कराया गया था। इसी प्रकार एक अन्य अभिलेख में वेणिमित्र का नाम मिला है। उक्त मित्रों शासकों के आपसी संबंधों का हमें कुछ ज्ञान नहीं है। संभवतः वे पुष्यामित्र के मूल राजवंश की अनेक शाखाओं में से थे।

मघ शासक

पुराणों में मघ वंश के राजाओं की संख्या नौ बताई गई है। इस राजवंश के प्रथम शासक भीमसेन के अभिलेख बान्धवगढ़ और गिंजा पहाड़ से प्राप्त हुए हैं। उसका कोई भी अभिलेख कौशाम्बी अथवा उसके समीपवर्ती स्थान से प्राप्त न होने से अनुमानतः मद्यों

का राज्य बघेलखण्ड तक ही सीमित था। उसके अभिलेखों में 51 और 52 तिथियाँ अंकित हैं, जो शक संवत की हैं।[15] इस प्रकार इस शासक का समय 130 ई0 के लगभग रहा होगा। उसे महाराज के साधारण विरूद्ध से संबंधित किया गया है। तो भी, उसके इस विरूद्ध के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी का सामन्त था। उसका पुत्र महाराज कौत्सीपुत्र प्रोष्ठ श्री था जिसके छह अभिलेख बान्धवगढ़ से प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों में 86, 87, और 88 तिथियाँ अंकित हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह 166 ई0 के लगभग शासन कर रहा था। डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर[16] का कथन है कि उसने 140 के 170 ई0 के मध्य शासन किया। इस समय कुषाण साम्राज्य पर हुविष्क और वासुदेव प्रथम शासन काल कर रहे थे। एक अत्यन्त अस्पष्ट लेखयुक्त मुद्रा का उल्लेख पुरातत्व विभाग के 1911–12 ई0 वार्षिक प्रतिवेदन में है। यह मुद्रा प्रयाग के भीटा नामक स्थान से प्राप्त हुई थी और इस पर प्रस्थ पढ़ा गया था। डॉ0 परमेशवरी गुप्त[17] के मतानुसार यह मुद्रा इस शासक की हो सकती है। किन्तु उसका कोई भी प्रमाण कौशाम्बी क्षेत्र से न मिलने के कारण वहां उसका अधिकार प्रमाणित नहीं होता।

नागवंश

वाकाटक – गुप्त शक्ति के उदय के पूर्व गंगा–यमुना नदियों के दाब सहित उत्तर पर नागवंश ने अपना वर्चस्व स्थापित किया। नागों का एक भी अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ और उनका सम्पूर्ण इतिहास सिक्कों पर आधारित है। पद्मावती कान्तिपुरी, मथुरा और विदिशा में उनके प्रमुख शक्ति केन्द्र थे।[18]

वाकाटक

वाकाटकों का उदय गुप्तों से कुछ पहले हुआ। उनके मूल स्थान के बारे में दो मत प्रचलित हैं। डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल[19] के मतानुसार वाकाटक शक्ति का प्रारम्भ बुन्देलखण्ड से हुआ। उनका मूल स्थान भूतपूर्व ओरछा राज्य का बाकाट ग्राम था। किन्तु डॉ0 वासुदेव विष्णु मिराशी का कथन है कि वे दकन के निवासी थे। कुछ समय पहले नागपुर विश्वविद्यालय में वाकाटकों पर हुए एक सेमिनार में यह स्वीकार कर लिया गया है कि वाकाटकों का मूलस्थान वाकाट उत्तर भारत में था।[20] विन्ध्यशक्ति इस राजवंश का प्रथम शासक था, जिसने नर्मदा नदी पार कर दकन में एक विशाल और विस्तृत सामाज्य की स्थापना की। यहां व्याघ्रदेव का गंज अभिलेख[21] (पन्ना जिला, ढनौर, तहसील) उल्लेखनीय है, जिसमें व्याघ्रदेव को वाकाटक नरेश पृथ्वीषेण की अधीनता स्वीकार करने वाला बताया गया है। प्रतीत होता है कि पृथ्वीषेण का प्रभाव पूर्वी बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के कुछ क्षेत्रों तक फैला हुआ था।

गुप्तवंश

भारत के राजनीतिक रंगमंत्र पर 319 ई0 में गुप्तवंश की स्थापना के साथ एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इस वंश का पहला ऐतिहासिक पुरूष श्री गुप्त था, जिसका उत्तराधिकारी घटोत्कचगुप्त और उसका उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ। इस राजा का महाराजाधिराज विरूद्ध संभवतः उसके ऐश्वर्य और शक्ति सम्पन्नता का द्योतक है। लिच्छवि कुमार देवी से चन्द्रगुप्त का विवाह संबंध राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा।

चन्द्रगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र समुद्रगुप्त हुआ। उसके शासनकाल में मगध ने अशोक की मृत्यु के बाद अपनी विलुप्त सत्ता और शक्ति पुनः अर्जित की। समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त्त के राजाओं और दकन के पूर्वी भाग को विजित करने के लिये अनेक रक्त रंजित सैनिक अभियान किये। प्रयाग प्रशस्ति में महाकान्तार के व्याघ्रराज के समुद्रगुप्त द्वारा पराजित किये गये जाने का उल्लेख है। इस कथन से प्रकट होता है कि विन्ध्य क्षेत्र उसके अधिकार में आ गया। परसमनिया पठार (सतना जिला) में नागदमन नामक स्थान पर बहुत से सती लेख विद्यमान हैं। इस स्थान के नागदमन नाम से प्रकट प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त ने यहां पर नागों को पराजित किया था। समुद्रगुप्त के बाद क्रमशः रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त प्रथम शासक हुए। तत्पश्चात् स्कन्दगुप्त ने सत्ता संभाली। उसके शासनकाल का एक अभिलेख[22] रीवा जिले के सुपिया ग्राम से प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि यह भाग गुप्तवंश के अधीन था। 467 ई0 में स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त सत्ता का प्रखर सूर्य हूणों के बर्बर आक्रमणों के कारण निस्तेज होने लगा। तो भी, अभिलेखों, मुद्राओं और साहित्यिक स्त्रोतों से पांचवी शती ई0 के प्रमाण मिलते हैं। स्कन्दगुप्त के बाद क्रमशः पुरगुप्त तथा कुमारगुप्त द्वितीय क्रमादित्य[23] शासक हुए, जिन्होंने 477 ई0 तक शासन किया।

कुमार गुप्त द्वितीय क्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् बुधगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने 476–77 से 494–95 ई0 तक शासन किया। उसका साम्राज्य प्रशस्त था। 484–85 ई0 के कारण अभिलेख से विदित होता है कि बुधगुप्त के शासनकाल में महाराज सुरचिमचन्द्र कालिन्दी और नर्मदा नदियों के मध्यवर्ती भूभाग का राज्यपाल था।[35] बुधगुप्तकालीन एक अभिलेख सीधी जिला के शंकरपुर से भी प्राप्त हुआ, जिससे प्रकट होता है कि बघेलखण्ड उसके राज्य में सम्मिलित था।

गुप्तवंश के सामन्त

परिवारजकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि डभाल (डाहल बघेलखण्ड) पर उनका अधिपत्य था। उनके ताम्रपत्रों से निम्नांकित शासकों के नाम प्रकाश में आये हैं।

हूण

हूणों का मूलस्थान मध्य एशिया में था। अपनी असाधारण वीरता, अदम्य उत्साह और अदभुत रणकौशल के बल पर हूणों ने मध्य एशिया से लेकर मध्य भारत तक के भू–भाग को रौंद डाला। हूणों के आक्रमणों के फलस्वरूप यमुना और नर्मदा नदियों का शासन प्रारम्भ हुआ। किन्तु शीघ्र ही मालवा के महत्वकांक्षी शासक यशोधर्मा विष्णुवर्द्धन ने तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल को पराजित कर दिया।[24] किन्तु यशोधर्मा की मृत्यु के बाद मिहिरकुल ने पुनः सत्ता संभाली और अपने नेतृत्व में उसने हूणों को पुनः संगठित किया। इस बार वह गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य द्वारा, पराजित हुआ।[25] अतः उसे कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र में निर्वासित जीवन यापन के लिये बाध्य होना पड़ा। यही कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।

वर्द्धन वंश

वर्द्धन वंश के प्रथम उल्लेखनीय शासक प्रभाकर वर्द्धन के राज्यकाल में थानेश्वर राज्य की शक्ति और सीमाओं का विस्तार हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंहासन का अधिकारी हुआ। किन्तु गौड़ नरेश शशांक ने षड़यंत्र पूर्वक उसका वध कर दिया। अतः राज्सवर्द्धन का अनुज हर्षवर्द्धन राज्यसिंहासन का अधिकारी हुआ। सिंहासनासीन होते ही उसने गौड़ के बौद्ध धर्म विरोधी शासक शशांक के विरूद्ध सैनिक अभियान किया। हर्ष ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अनेक युद्ध किये। पंच भारतों को रौंदकर तथा शक्ति संतुलन में अस्थिरता उत्पन्न करने वाले तत्वों को नष्ट कर उसने उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। [26]

गुर्जर–प्रतिहार

नवी शत ई0 के प्रारम्भ में उत्तर भारत की अप्रतिहत प्रभुता के आकांक्षी कन्नौज के गुर्जर–प्रतीहार और बैंगाल तथा बिहार के पाल थे। गुर्जर – प्रतिहारों एक भी अभिलेख विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु बराह ताम्रपत्र[27] से प्रकट होता है कि

कालंजरमण्डल पर उनका अधिकार था। अतः उससे लगे हुए क्षेत्र बघेलखण्ड पर भी गुर्जर प्रतिहारों का शासन रहा होगा।

कलचुरि वंश

त्रिपुरी के कलचुरि राजवंश का संस्थापक वामराजदेव था। उसने सातवीं शती ई0 के उत्तरार्द्ध में कालिंजर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड पर अपना प्रभुत्व जमाया[28] प्रो0 मिराशी के मतानुसार वामराज ने 675 ई0 से लगभग 700 ई0 तक शासन किया।

सागर से शंकरगण प्रथम का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। प्रो0 मिराशी लिपि के आधार पर उक्त अभिलेख का समय आठवीं शती ई0 का मध्य निर्धारित करते हैं। और नामदेव तथा शंकरगण के बीच दो–तीन पीढ़ियों का अन्तर बताते हैं। पूर्ववर्ती नरेशों की भाँति शंकरगढ़ के चक्रवर्तित्व को प्रदर्शित करने वाली उपाधियाँ धारण की।

शंकरगण के पश्चात कलचुरि वंश में लक्ष्मणराज शासक हुआ। प्रो0 मिराशी के मतानुसार उसने 825–850 ई0 तक शासन किया। उसकी मृत्यु के बाद कोकल्ल राजसिंहासन का अधिकारी हुआ। अभिलेखों में उल्लेख मिलता है कि उसने सरयूपार के कलचुरि राज शंकरगण और चित्रकूट के गुहिल शासक हर्ष की सहायता की। चन्देल राजकुमारी नट्टा देवी से कोकल्ल ने अपना विवाह कर चन्देलों से मित्रता स्थापित की।[29] उसने 850 से 890 ई0 तक शासन किया। तत्पश्चात् शंकरगढ़ द्वितीय और उसके पश्चात उसका पुत्र बालहर्ष राजसिंहासन का अधिकारी हुआ। उपर्युक्त राजाओं के शासनकाल का विवरण प्राप्त नहीं है।

बालहर्ष के पश्चात युवराजदेव प्रथम शासक हुआ। वह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। उसने गौड़ाधिपति, मालव नृपति और दक्षिण कोसलाधिपति को पराजित किया। राष्ट्रकूटों और कलचुरियों ने मिलकर 916–17 ई0 में गुर्जर – प्रतिहार शासन महीपाल पर आक्रमण कर दिया, जिससे उत्तराधिकारी गोविन्द चतुर्थ के शासनकाल में कलचुरियों ने राष्ट्रकूटों को पयोष्णी के युद्ध में पराजित किया।

नोहला शिव की परम भक्त थी। उसी के कहने पर युवराजदेव ने मध्यप्रदेश के मत्तमयूर मठ के प्रभावशिव नामक आचार्य को अत्यन्त आदर पूर्वक अपने राज्य में आमंत्रित किया और उनके लिये रीवा नगर के समीप गुर्गी में एक विशाल मठ और देवालय का निर्माण करा कर वहाँ रहने वाले शैवाचार्यो के कुशल क्षेम के लिये अनेक ग्रामों का दान किया। युवराज देव का मंत्री भाक मिश्र एक बड़ा विद्वान और धार्मिक प्रकृति वाला ब्राह्मण था। उसका अमात्य गोल्लाक विष्णु भक्त था। उसने बान्धवगढ़ में मत्स्य, कर्म, वराह, परशुराम और हलधर की विशाल मूर्तियों का निर्माण कराया।

युवराजदेव प्रथम के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणराज द्वितीय शासक हुआ। उसने बंग, पाण्ड्य, लाट, गुर्जर, कश्मीर आदि देशों के राजाओं को पराजित किया और दक्षिण कोसल पर आक्रमण किया। लक्ष्मणराज के बाद उसका पुत्र शंकरगण तृतीय राजगद्दी पर बैठा। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका भाई युवराज द्वितीय सिंहासन का अधिकारी हुआ।[30] उसके शासनकाल में परमार गुंज ने कलचुरियों पर आक्रमण कर उनकी राजधानी त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया। किन्तु चालुक्य नरेश तैलप के कारण मुंज को वापस लौटना पड़ा। प्रतीत होता है कि इस समय तक कलचुरि शक्ति का ह्रास प्रारंभ हो गया था। युवराजदेव द्वितीय के पश्चात् कोकल्ल द्वितीय शासक हुआ। उसने प्रतीहार शासक राज्यपाल, गौड़ देश के महीपाल और कुन्तलाधिप चालुक्य नरेश विक्रमादित्य पंचम को पराजित किया। इस प्रकार उसने ह्रासोन्मुखी कलचुरि शक्ति को संजीवनी देने का कार्य किया।

कोकल्ल द्वितीय के पश्चात 1015 ई0 में उसका पुत्र गांगेयदेव राजा हुआ। उसने उड़ीसा तक आक्रमण कर त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि भारत की। परवर्ती कलचुरि नरेशों ने अपने लेखों में इस विरूद का उल्लेख अत्यन्त गौरव के साथ के साथ किया है। गांगेवदेव शिव भक्त था। उसे प्रयाग के अक्षयवट के समीप निवास करने की तीव्र इच्छा थी। उसी स्थल पर उसका देहावसान हुआ।

गांगेवदेव की मृत्यु के बाद उसका यशस्वी पुत्र लक्ष्मीकर्ण गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता से भी बढ़कर पराक्रमी हुआ। अपने राज्यकाल के प्रथम सात वर्षों में ही उसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की। उसने पहले बंग अथवा पूर्वी बंगाल पर आक्रमण किया और वहां के गोविन्दचन्द्र नामक राजा को अथवा उसके उत्तराधिकारी को पदच्युत कर वह राज्य वज्रवर्मा को दिया। तत्पश्चात् वज्रवर्मा के पुत्र जातवर्मा से अपनी पुत्री वीर श्री का विवाह कर दृढ़ संबंध स्थापित किया। तदुपरान्त उसने दक्षिण की ओर कूच कर पल्लव, चोल और कुन्तल नरेशों को पराजित किया। कर्ण ने गुर्जराधिपति को भी पराजित किया। उसके रीवा अभिलेख[31] से ज्ञात होता है कि जब कर्ण के आक्रमण का समाचार गुर्जर रमणियों को मिला, तब उनके गालों पर से काजलयुक्त अश्रुधारा वह निकली और उनके मस्तक का सौभाग्यसूचक तिलक अस्पष्ट होने लगा।

बुन्देलखण्ड में इस समय चन्देल शासक देववर्मा (1015ई0) का शासन था। वह एक कमजोर शासक था। अतः कर्ण ने उसे पराजित कर चन्देलों के राज्य के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया। इस तथ्य की पुष्टि बिल्हण द्वारा भी होती है, जो कर्ण को कालंजरपति का काल कहता है। उत्तर भारत में अपना एक छत्र राज्य स्थापित करने के अपने प्रयत्न में विफल होते देख उसने अपने पुत्र यशः कर्ण का स्वयं राज्याभिषेक कर दिया। प्रो0 मिराशी का कथन है कि संभवतः उसके विरूद्ध उठ खड़े हुए चन्देल, परमार और चालुक्य नरेशों ने उसे राजसिंहासन छोड़ने के लिये विवश किया। यशः कर्ण ने सत्ता संभालते ही आन्ध्रप्रदेश पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक विजयादित्य सप्तम को पराजित किया।[32] मालवा के राजा लक्ष्मदेव ने यशःकर्ण को पराजित कर दिया। नरवर्मा की नागपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि लक्ष्मवर्ण (1086–94 ई.) ने त्रिपुरी पर आक्रमण कर अपने युद्ध प्रिय शत्रुओं का विध्वंस किया और विन्ध्यपर्वत की तलहटी में नर्मदा नदी के तट पर घेरा डाला, जहाँ उसके हाथियों ने सरित जल में स्नान कर अपनी थकावट दूर की। यशः कर्ण के पश्चात् त्रिपुरी का राजसिंहासन उसके पुत्र गयाकर्ण को प्राप्त हुआ। यशःकर्ण के शासनकाल से प्रारम्भ कलचुरि राज्य का संकुचन उसके शासनकाल में तीव्रतर हो गया। उसके शासनकाल में कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में स्थित बघेलखण्ड का सम्पूर्ण प्रदेश चन्देलों के साम्राज्य का अंग बन गया। गयाकर्ण के उपरांत उसकी रानी आल्हण देवी से उत्पन्न पुत्र नरसिंह देव गद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल के दो लेख क्रमशः लाल पहाड़ (भरहुत सतना जिला) तथा आल्हाघाट (रीवा जिला) से प्राप्त हुए हैं। इन दोनों लेखों के प्राप्ति स्थान कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में हैं। इससे स्पष्ट होता है कि नरसिंह ने अपने पैतृक राज्य के यशः कर्ण के काल में खोये हुए प्रदेश का कुछ भाग चन्देलों से मुक्त करा लिया। यह घटना 1158 ई. की है। इससे अनुमान होता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था।

नरसिंह के बाद उसका अनुज जयसिंह का सिंहासनारोहण हुआ। उसके राज्याभिषेक का समाचार सुनकर गुर्जरराज भाग खड़ा हुआ, तुरूष्क ने अपना भुजबल त्याग दिया और कुन्तलराज ने कामक्रीड़ा त्याग दी।यह अतिश्योक्ति मात्र है अथवा इसमें कुछ सत्यांश है, इसका निश्चय करना स्वतंत्र प्रमाणों के अभावों में असंभव है। किन्तु जयसिंह के माण्डलिक महाराणक कीर्तिवर्मा के रीवा ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि चन्देलों से कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में आधुनिक टौंस नदी घाटी का जो प्रदेश नरसिंह ने पुनः प्राप्त किया था, उस त्रिपुरी के कलचुरियों का वर्चस्व जयसिंह के शासनकाल में भी अक्षुण्ण रहा।

जयसिंह के उपरांत रानी गोसलदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र विजय सिंह राजगद्दी पर बैठा। उसे अपने शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में संभवतः चन्देल राजा परमर्दिदेव से पराजित होना पड़ा। ककरेड़ी (रीवा जिला) का राजा कीर्ति वर्मा जयसिंह का माण्डलिक था। उसके अनुज सालक्षणवर्मा ने विजय सिंह के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु विजय सिंह के एक अन्य माण्डलिक मलय सिंह ने उसको पराजित कर पुनः कलचुरि आधिपत्य मानने को विवश कर दिया। विजय सिंह का एक सहोदर अनुज अजय सिंह था, जिसे महाकुमार कहा गया है। अभी तक अजय सिंह को विजय सिंह का पुत्र माना जाता था।[33]

सन्दर्भ

1. इण्डि.आर्के.ए.रिव्यू. 1961–62, पृ. 8, 9, 32, 84।
2. रीवा का पुरातत्व, पृ. 29–30।
3. इण्डि.आर्के.ए.रिव्यू. 1961–62, पृ. 81।
4. रीवा राज्य दर्पण, पृ. 293.।
5. रीवा थ्रू दि एजेज पृ. 11।
6. रामायण 1, 23, 16, 21।
7. विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, पृ. 73–74.।
8. एपि. इण्डि. खण्ड 31, पृ. 205–10।
9. से.ई. खण्ड 1, पृ. 39.।
10. पोलिटिकल हिस्ट्री, पृ. 371, जबिरिसो. 1949 पृ. 44–84, ज. न्यू.सो.ई. खण्ड 26, पृ. 1।
11. ज.न्यू.सो.ई. खण्ड 26, पृ. 1।
12. ज.न्यू.सो.ई. खण्ड 26, पृ. 5 टि.7।
13. कार्पस, खण्ड 3, पृ. 1 'रुद्रदेवमतिलनागदत्त'।
14. कनिधम, स्तूप ऑफ भरहुत, पृ. 132.।
15. एपि. इण्डि. खण्ड 24, पृ. 146–233.।
16. वाकाटक – गुप्त युग, पृ. 33.।
17. वा.प्र.व.सं. 2006, पृ. 173।
18. सागर यू.इ. एजेज, पृ. 9।
19. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 67.।
20. दि एज ऑफ दि वाकाटकाज, 1962.।
21. एपि. इण्डि.,खण्ड 17, पृ. 12–13.।
22. एपि. इण्डि. खण्ड 33 पृ. 306.।
23. कलासिकल एज. पृ 30, पोलिटिकल हिस्ट्री, पृ. 588, गुप्त एम्पायर पृ. 107.।
24. कापर्स, खण्ड 3पृ. 146, 148.।
25. बील, खण्ड, पृ. 167.।
26. हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ. 177।
27. एपि.इण्डि. खण्ड 19, पृ.18.।
28. कलचुरिनरेश और उनका काल.।
29. कलचुरिनरेश और उनका काल पृ. 15।
30. कापर्स खण्ड 4, पृ. 256 श्लोक 8 पृ. 213–14.।
31. विक्रमांकदेवचरित, 1893।
32. कापर्स खण्ड 4, पृ. 56–57.।
33. कापर्स खण्ड 4, पृ. 18.।